दिया और जब विदा होने का समय आया तो यह है कि विलक्षण और अनुपम शिष्य ने अपने गुरू की इस आज्ञा पर जरा सी भी न-नुच किए बिना बड़ी श्रद्धा से तथास्तु कह दिया।

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने अपने गुरू दण्डी स्वामी विरजानन्द जी से जो कुछ सीखा उसे इस प्रकार से विवेचित किया जा सकता हैं मूलतः गुरू-शिष्य दोनों ही ईश्वर-भक्त एवं योगी महापुरूष थे। उनका मानना था कि ईश्वर एक है, निराकार है तथा निज नाम ओम् है। इसीलिए उन्होंने मूर्ति-पूजा को वेद विरूद्ध बताया। परमात्मा कभी भी मनुष्य के रूप में अवतरित नहीं होता है इसलिए उनके अवतारों की कल्पना करना अज्ञानता का प्रतीक है। वेद में इस प्रकार का कोई संकेत नहीं है। मृतक-श्राद्ध वेद-विहित नहीं है तथा जीवित मां-बाप और पितरों की सेवा सुश्रुषा करना ही सच्चा श्राद्ध है। कोई भी आर्ष ग्रन्थ बाल-विवाह की अनुमति नही देता है और न ही विधवा के लिए पुनर्विवाह वर्जित है। आश्रम और वर्ग व्यवस्था वेद विहित है तथा सामाजिक समरसता के लिए इनका कार्यान्वयन करना अनिवार्य है किसी भी वर्ण के लिए उसके गुण,कर्म,स्वभाव प्रमुख है न कि जन्म। नारी को भी पुरूषों के समान ही वेदादि आर्ष ग्रन्थों को पढ़ने का अधिकार है। वेद परमात्मा द्वारा आदि-सुष्टि में दिया गया ज्ञान है इसलिए वह निभ्रान्त और अपौरूषेय तथा स्वतः प्रमाण है। अपौरूषेय वेद के अतिरिक्त संस्कृत का जितना भी साहित्य है उसको उन्होंने आर्ष तथा अनार्ष दो श्रेणियों में विभक्त करके कहा कि वैदिक काल के ऋषि-प्रणीत ग्रन्थ आर्ष तथा महाभारत काल के बाद की सामान्य मनुष्यों द्वारा रचित पुस्तकें अनार्ष है। सभी आर्ष ब्रन्थों का संवर्धन करना चाहिए। इसके लिए राज्य-शक्ति का सहयोग भी प्राप्त करना चाहिए। तथा अपने देश के परतन्त्रता की बेडियों से मुक्त करके